जीवन क्या है?

जे. बी. एस. हाल्डेन

मैं इस सवाल का जवाब नहीं देने वाला हूं। मुझे तो इस बात में भी संदेह है कि कभी इस सवाल का पूरा जवाब देना संभव हो पाएगा। कारण यह है कि हम यह तो जानते हैं कि जीवित होने पर कैसा लगता है, ठीक उसी तरह जैसे हमें पता है कि लालिमा या दर्द या मेहनत क्या चीज़ें हैं। लिहाज़ा हम इन चीज़ों का बयान किसी और चीज़ के रूप में नहीं कर सकते। मगर यह सवाल कोई बेकार सवाल नहीं है क्योंकि कई बार हम यह जानना चाहते हैं कि कोई व्यक्ति जीवित है या नहीं। जब हमारा सामना रोगजनक सूक्ष्मजीवों से होता है, तो यह काफी स्पष्ट होता है कि बैक्टीरिया भी जीवित

हैं। मगर बात जब खसरा या चेचक के वायरस की होती है तो मामला स्पष्टता से कोसों दूर होता है।

तो हमें जीवन का वर्णन किसी और चीज़ के रूप में करना पडेगा, भले ही वह वर्णन कितना ही अधूरा हो। मसलन, हम इस तरह के वक्तव्य का सहारा ले सकते हैं 'पदार्थ पर चेतना का प्रभाव', मगर कई कारणों से यह वक्तव्य उपयोगी नहीं है। जैसे, हो सकता है कि हम इस बात से सहमत हों कि इंसान और शायद कुत्तों में भी चेतना होती है मगर किसी घोंघे या आलू में चेतना खोजने के लिए आस्था को ज़रा ज़्यादा ही खींचना पडेगा। दूसरी ओर इस परिभाषा में कई प्रसिद्ध कलाकृतियों व पुस्तकों को शामिल करना होगा जिनमें उनके रचयिता का दिमाग झांकता है और रचयिता की मृत्यु के बरसों बाद भी ये पुस्तकें पाठकों पर असर डालती रहती हैं। इसी प्रकार से जीवन को एक जीवनी शक्ति के रूप में परिभाषित करना भी बेकार ही है। जॉर्ज बर्नाड शॉ और प्रोफेसर सी.ई.एम. जोअ्ड का विचार है कि जीवितों में एक जीवनी शक्ति होती है। वैसे तो मुझे संदेह है मगर यदि इस वक्तव्य में कोई अर्थ है तो आपको इस जीवनी शक्ति का आभास पदार्थ पर उसके असर से ही लगेगा। तो हमें जीवन को पदार्थ के रूप में ही परिभाषित करना होगा। आम जीवन में हम सजीवों को उनकी आकृति और टेक्सचर से पहचानते हैं। मगर ये चीज़ें तो मृत्यु के कुछ समय बाद तक नहीं बदलती। स्तनधारी और पक्षी जब ठंडे पड़ जाएं तो हम कहते हैं कि वे मर गए।

मगर यह जांच मेंढकों या घोंघों पर नहीं चलेगी। उनको हम मरा कहते हैं जब वे छूने पर भी हलचल न करें। परन्तु किसी पौधे के जीवित होने का एकमात्र प्रत्यक्ष लक्षण यह है कि उसमें वृद्धि होती है या नहीं, और यह पता करने में कई बार महीनों लग जाते हैं। बहरहाल, इन सभी परीक्षणों में एक बात समान है कि इनमें जीवन की कसौटी के तौर पर किसी-न-किसी गति या परिवर्तन का सहारा लिया गया है (ऊष्मा भी

परमाणुओं की बेतरतीब गति ही है)। इन सबमें एक और समानता यह है कि ये सब रासायनिक नहीं बल्कि भौतिक परीक्षण हैं। मेरे ख्याल से इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भौतिक की बजाए रासायनिक तरीके से हम जीवन के बारे में कहीं ज़्यादा समझ सकते हैं। मतलब यह नहीं है कि रसायन के लिहाज़ से जीवन को पूरी तरह परिभाषित कर दिया गया है। इसका मतलब यह ज़रूर है कि जीवन भौतिक की बजाए रासायनिक घटनाओं का क्रम (पैटर्न) है। शायद एक उदाहरण से बात ज़्यादा साफ हो जाएगी।

कल्पना कीजिए कि एक नेत्रहीन व्यक्ति और एक बधिर व्यक्ति मेकबेथ नाटक का मंचन और एलेक्ज़ेंडर नेव्स्की नामक फिल्म देखने जाते है। बधिर व्यक्ति को नाटक बहुत कम समझ में आएगा। उसे यही पता नहीं चलेगा कि डंकन का कत्ल हुआ है, किसने किया तो दूर की बात है। नेत्रहीन व्यक्ति को कम दिक्कत आएगी। शेक्सपीयर के नाटकों का प्रमुख पक्ष शब्द हैं। मगर फिल्म में स्थिति उलट होगी।

समस्त जीवन में सामान्य बात रासायनिक घटनाएं हैं। और ये विभिन्न जीवों में असाधारण रूप से समान हैं। हम कह सकते हैं कि जीवन मूलतः रासायनिक घटनाओं का एक ताना-बाना है और इसके साथ लगभग सभी जीवों में विशिष्ट आकृति, विशिष्ट किस्म की गति, विशिष्ट संवेदनाएं जुड़ी होती हैं और कुछ जीवों में एक उद्देश्य भी होता है। विभिन्न जीवों का रासायनिक संघटन काफी अलग-अलग होता है। पेड़ मूलतः लकड़ी के बने होते हैं जो इंसानों के घटकों के बहुत समान नहीं होती। हालांकि लकड़ी ग्लायकोजन के ज़्यादा नज़दीक होती है, जो हमारे अधिकांश अंगों में पाया जाता है। मगर किसी पेड़ की पत्तियों, तने और जड़ों – खासकर जड़ों में जो रासायनिक परिवर्तन होते हैं वे मानव शरीर में होने वाले परिवर्तनों के काफी समान होते हैं। जड़ों को भी, बिल्कुल इंसानों की तरह ऑक्सीजन की ज़रूरत होती है। जड़ जीवित है या नहीं, यह भी

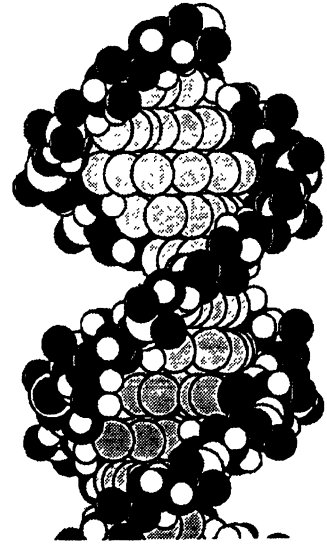

ठीक उसी तरह पता किया जा सकता है जैसे आप कुत्ते के बारे में पता करते हैं। आपको यह देखना होगा कि प्रति मिनट कितनी ऑक्सीजन की खपत हो रही है। और दोनों में ऑक्सीजन का उपयोग भी एक जैसी रासायनिक क्रियाओं के लिए होता है। मोटेतौर पर इन क्रियाओं को कम तापमान पर भोजन का दहन कह सकते हैं। सामान्य परिस्थितियों में ऑक्सीजन ग्लूकोज़ से तब तक क्रिया नहीं करती जब तक कि दोनों पदार्थों को काफी गर्म न किया जाए। मगर लगभग सारे जीवों में यह क्रिया एंज़ाइमों की मदद से सामान्य तापमान पर होती है। हम जितनी भी ऑक्सीजन का उपयोग करते हैं उसे पहले एक रसायन से जुड़ना होता है – यह पदार्थ एक प्रोटीन और लौह के जुडने से बनता है। वार्बर्ग ने इसकी खोज खमीर में 1924 में की थी। 1926 में मैंने भी कुछ अनगढ से प्रयोग किए थे जिनसे हरे पौधों, दीमकों और चूहों में भी इसी, करीब-करीब इसी, एंज़ाइम का पता चला था। उसके बाद यह एंज़ाइम कई अन्य जीवों में प्राप्त हुआ है।

यही बात कई अन्य क्रियाओं पर लागू होती है। आलू शर्करा को मंड में बदल देता है और आपका जिगर शर्करा को ग्लायकोजन में बदलता है। दोनों में लगभग एक-सी प्रक्रिया होती है। शर्करा को किण्वन (fermentation) द्वारा अल्कोहल में बदलने और मांसपेशियों के संकुचन, दोनों में अधिकांश चरण तो एक समान होते हैं। और भी कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। अलबत्ता, इन प्रक्रियाओं के अंतिम परिणाम बहुत अलग-अलग होते हैं।

किसी कारखाने में बहुत ही थोड़ा-सा परिवर्तन करके स्टेन-गनों की बजाए सिलाई मशीनें या साइकलें बनाई जा सकती हैं। इसी प्रकार से जिस प्रक्रिया से एक कीट अपनी त्वचा बनाता है और एक घोंघा अपना चिपचिपा स्राव (स्लाइम) बनाता है, वे लगभग एक सी हैं हालांकि अंतिम उत्पाद बहुत भिन्न है।

दरअसल, समस्त जीवन कुछ एक-सी रासायनिक क्रियाओं से मिलकर बना है, जो बहुत अलग-अलग पैटर्न में व्यवस्थित है। जैसे, जंतु भोज्य पदार्थों की खपत करते हैं जबकि अधिकांश पौधे इन्हें बनाते हैं। मगर पौधों और जंतुओं दोनों में ही निर्माण और विघटन की क्रियाएं लगातार चलती रहती हैं। संतुलन अलग-अलग हैं। एंजेल्स ने कहा था कि जीवन प्रोटीन के अस्तित्व का एक ढंग है (एंजेल्स ने जिस शब्द का उपयोग किया था उसका अनुवाद 'एल्बुमिनस पदार्थ' किया जाता है)। यह बात इस मायने में सही लगती है कि सारे एंज़ाइम प्रोटीन ही हैं। यह बात इस मायने में भी सही है कि सभी सजीवों के बीच बुनियादी समानता रासायनिक है। किन्तु एंजाइम

और प्रोटीन्स को शुद्ध रूप में प्राप्त किया जा सकता है और ये कांच की बोतल में भी अपनी विशिष्ट क्रियाएं जारी रखते हैं। मगर कोई जैव-रसायन शास्त्री नहीं कहेगा कि ये जीवित हैं।

इसी तरह से शेक्सपीयर के नाटक तो शब्दों से बने हैं मगर आइंस्टाइन की फिल्म में शब्द बहुत कम हैं। यह बात जानना उतना ही ज़रूरी है, जितना यह जानना कि जीवन रासायनिक क्रियाओं से मिलकर बना है। मगर स्वयं शब्दों से भी ज़्यादा महत्व शब्दों की जमावट का है। इसी प्रकार से जीवन रासायनिक क्रियाओं का एक पैटर्न है।

इस पैटर्न के विशेष गुणधर्म हैं। यह अपने ही जैसे पैटर्न को जन्म देता है, जैसाकि एक लौ भी करती है मगर यह पैटर्न स्वयं का नियमन भी करता है जबकि लौ ऐसा नहीं करती। इसके अलावा इस पैटर्न में कई विचित्र बाते हैं। यानी जब हम यह कहते हैं कि जीवन रासायनिक क्रियाओं का एक पैटर्न है तो हमने कुछ सच्ची और महत्वपूर्ण बात कही है। इसका व्यावहारिक महत्व यह है कि हम इसके कुछ हिस्से पर नियंत्रण करना सीख रहे हैं। इस ज्ञान के प्रारंभिक फल उपयोगी हैं। जैसे सल्फोनामाइड्स, पेनिसिलीन और स्ट्रेप्टोमायसीन।

मगर यह कहना कि हम जीवन को इसी तरह से पूरी तरह परिभाषित कर देंगे, उसे मशीन में तब्दील कर देने जैसा होगा। मेरे विचार में यह असंभव है। दूसरी ओर, मेरे विचार में यह कहना तो असत्य और निरर्थक होगा कि जीवन रासायनिक क्रियाओं से मिलकर नहीं बना है। यह वैसे ही होगा जैसे कोई कहे कि कविता शब्दों से नहीं बनी होती।

जे. बी. एस. हाल्डेन: (1892-1964) प्रसिद्ध अनुवांशिकी विज्ञानी एवं विख्यात विज्ञान लेखक। प्रस्तुत निबंध 1949 में प्रकाशित 'वॉट इज़ लाइफ' संकलन से लिया गया है।
अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य की स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं।